ओ३म्

देवयज्ञ पर

आध्यात्मिक दृष्टि

चमूपति
एम. ए.

देव-यज्ञ

पर

आध्यात्मिक दृष्टि

लेखक—

चमूपति एम० ए०

प्रकाशक तथा मुद्रक—

राजपाल ऐंड सन्ज़

सरस्वती आश्रम

लाहौर ।

[प्र]थम बार ,0 } फाल्गुन १९८६ वि० { मूल्य ।=)

प्रकाशक—

राजपाल ऐंड संज़,

अनारकली, लाहौर।

मुद्रित—

विरजानन्द प्रेस

मोहनलाल रोड, लाहौर

समर्पण

यज्ञमूर्ति

स्वामी श्रद्धानन्द जी

सन्यासी

के

करकमलों

में

विषयसूची ।

ओ३म्

प्रस्तावना

गत गर्मियों की छुट्टियों में जब कभी काम काज से छुट्टी होती, देव यज्ञ का विचार करते। एकान्त चित्त हो कर कई नई बातें सूझी। उन्हें लिखना गया कि नष्ट न हों। इस प्रकार कागज़ों का एक बड़ा सा मुट्ठा बन गया और अन्य हस्तलेखों में रख दिया गया। अब महाशय राजपाल छपवाने को पुस्तक मांगते हैं। वही मुट्ठा सामने आया है। इसेही भेज दूं। पुस्तक बनाते हुए भाषा ललित करते हैं। वाक्य क्रम सुधारते हैं हमें इतना समय नहीं। थोड़ी बहुत काट छांट करदी है। अधिक परिवर्तन करूँ तो वह भाव बदलता है जिसने यह पत्र पहिले लिखे थे। मुझे इन पृष्ठों के पढ़ने से लाभ हुआ है। आशा है, पाठक भी लाभ उठायेंगे।

देवयज्ञ पर वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता है। आज कल औषधियों के नाम मात्र लेकर उनके गुण वर्णन करदेने से काम नहीं चलता। डी. ए. वी. कालेज तथा गुरुकुल के परीक्षणालय में यज्ञ सामग्री के रासायनिक प्रयोगों द्वारा उस से प्राप्त होने वाली गैसों तथा फलुओं का परीक्षण कियाजाए

तब कहीं वैज्ञानिक संसार संतुष्ट हो। कोई ऐसा विज्ञान वेत्ता मिल जाता तो अधूरा पुस्तक छपाने को न भेजते। अध्यात्मिक दृष्टि इस लिये प्रकाशित करते हैं कि कोई विज्ञान का वीर विज्ञान की त्रुटि को पूरा करेगा तब यज्ञ पूर्ण होगा।

वहावल पुर
६ फाल्गुन १६७६ } चमूपति

57
19

भूमिका

१ देव

वेद को चाहे कोई किसी दृष्टि से पढ़ो, दो भावों के आगे आंखें न मूंद सकोगे। यूरोपियन भाष्यकार इञ्जील के पूर्वभाग में पशुओं के बलिदान पूर्वक परमात्मा की प्रसन्नता का प्रहास पढ़ चुका है। वह इस विचार को मनुष्य के धार्मिक विचार का प्रथम स्फुरण समझता है। उसके पूर्वज अनेक देवार्चन की अबोध क्रीड़ा नित्यंप्रति करते थे। उसवेद में अनेक देवताओं की खोज इसी निमित्त ही तो है कि संसारभर की पूर्वजातियों को अबोध दिखाकर अपने पुरुषाओं की बाललीला पर परदा डाले। इसी भाव से प्रेरित होकर सही, पर वह कहता है, और चीख़ चिल्ला कर कहता है—कि वेद यज्ञों की पुस्तक है. और उसमें देवों की स्तुति है।

देव और यज्ञ—यह दो शब्द सनातन आर्य्य जीवन का संक्षेप हैं। आर्य्य धर्म का सार देवों और यज्ञों में है। एक आत्मा है दूसरा शरीर। वेद की एक दाहिनी आंख है, दूसरी बाहिनी।

भोला बच्चा सूर्य्य को निकलता देख कर झट हाथ फैला देता है कि मुझे यह गोला चाहिये। चन्द्र की ज्योत्स्ना देखकर

रोता और चिल्लाता है कि मैं खेलूं तो इसी खिलौने से। आंधी आए, बादल गर्जे, बिजली कूदे। वह आंखे मूंद लेता है और माता की गोदी में इस डर से कि देव आया! भूत आया!! हाथ पांव सुकेड़ कर छिप जाता है। यह शान्त शरण न मिले तो रोता है, और सहायता के लिये जान अनजान सब को बुलाता है। कभी दीपक पर मुग्ध है, कभी जलती और बुझती चिनगारी पर।

क्या आदि काल में आर्य्य बालकों ने ऐसी ही बाल-चेष्टाएँ की? कभी चमकते खिलोनों पर मचल गये? कभी आंधी और बादल से डर कर गिड़गिड़ाए? उनकी चीखें, उनकी चिल्लाहट, उनकी चाटुकारी, उनका विनय विलाप वेद की स्तुतियां बनीं?

यह कल्पनाएँ यूरोपियनों की हैं।

वेद की स्तुतियों की स्वर पर ध्यान दो! उनकी लय पहिचानो! यह रोना है? चिल्लाना है? या बुद्धिमानों का भक्तिरस पूर्णगान है?

आंगल कवि वर्डस वर्थ वर्षा के अनन्तर इन्द्र धनुष तना देखता है तो उसका जी उछलता है। वह कहता है बालपन से मेरी यह चेष्टा रही है। वृद्ध होने तक इस धनुष की डोरी पर नाचा करूं तो जियूं नहीं तो मर जाऊं।

इसे बाल क्रीड़ा कोई नहीं कहता। यह कवि-दृष्टि है, यह यह तत्त्ववेत्ताओं का तत्त्वावलोकन है।

हमारे हां दरिया के पुजारी दरिया को 'दूला' कहते हैं। लेखक सैकड़ों वार 'दूले' के दर्शन को गया । जलोपासकों की प्रेमरस में सनी गीतियां सुनीं । भक्तिमद में घंटों डूबा रहा । 'दूले' की लहरियों पर मनके पांवसे नाचा । 'दूले' की छाती पर दिये बहते देख कर दीपावलि का दृश्य भूल गया।

पुजारी की गीतियां सुनीं तो उनका नाम उन्मत्त-गीत, मूढ़ों का प्रलाप रक्खा । और इस बात का पता नहीं सभ्य इग्लैण्ड का पूर्णशिक्षित कवि-रत्न वही वर्डस वर्थ समुद्र के तट पर खड़ा, खीष्टमत को ठण्डी सांस के साथ विदा करता है। उसने ठानी यही है कि बहते बुदबुदों में देवों का दर्शन करूं।

अहा ! दिव्य चक्षुकी दिव्यदृष्टि ! विज्ञान शुष्क था तू उसके लिये उपासना रूपी तैल बनी। सूर्य्य है तो धातुओं का गोलकही। प्रकाश इन धातुओं का गुण मात्र है ; जहां यह धातु इकट्ठे हुए, यही रङ्ग, यही रूप, यह किरणें, यही आग्नेय बाण स्वतः बन जावेंगे। परन्तु यह गुण क्यों है ? इन धातुओं से इसका विशेष सम्बन्ध क्या है ? तेरे लिये विज्ञान का भण्डार भक्ति का भण्डार होगया । आत्मा की पियास जल क्यों बुझाए ? इसीलिये कि आत्मा भी देव है, जल भी।

आधे से अधिक जगत् मनुष्यों के हृदय में बसता है। इन्द्र धनुष सूर्य्य की किरणें होती हैं। पानी की किसी आकाश में अटकी हुइ बूंद में विचलित हो गई। किसी कवि से पूछो !

यह उसके प्रियतम का झूला है। कोई देवता आकाश से नीचे उतरा चाहता है। कोई उसको झुलाओ भी !

वेद की वर्णन शैली में विज्ञान की विद्युत् है परन्तु भक्ति की घटनाओं से घिरी हुई। इधर आनन्दघन गर्जता है, उधर ज्ञान की रेखा चमकती है। भौतिक अद्भुतालय को आत्मिक देवालय बना दिया है।

सजीव वर्णन निर्जीव विषय को सजीव बना देता है। वेदमन्त्र का जो विषय हो सो देव। बिना प्राण प्रतिष्ठा के जड़ मूर्त्तियों को चेतन किया है। वेद परमात्मा को कवि कहता है। आदिम कवि का पद्यात्मक काव्य शुष्क विज्ञानी का परीक्षणालय नहीं हो सकता।

मूर्ख इन कल्पनाओं के आगे हाथ जोड़ते हैं। कवियों के हृदय इस कविता का आनन्द लेते हैं। पुजारी शङ्ख फूंकता है, कवि का हृदय उमड़ता है। मन्दिर में घण्टियां बजती हैं, कवि चुपके चुपके अनहत गीत सुनता है। एक ने बाह्य, अन्तरीय दोनों आंखें मूंद ली। वह अन्धी भक्ति में हाथ पांव हिलाया किया। दूसरे का ज्ञान चक्षु खुला रहा। उसने विज्ञान पूर्वक प्रेमानन्द लूटा।

तैतीस करोड़ देवताओं पर लोग हँसते हैं। उपासक इतने नहीं, जितने उपास्य हैं। मूढ़ों की उपासना ने उपास्यों की निन्दा कराई। लोगों ने देव शब्द को परमात्मा का पर्य्याय समझा, तभी से अनेक देवार्चन चले। मेरे प्रभु का निवास

होने से प्रत्येक अणु देव है। वेद के प्रत्येक विषय की गणना करें तो मुख्य तथा गौण सब मिल मिला कर तैंतीस करोड़ से अधिक देवता होते हैं। ऐसे देव तो हम स्वयं भी हैं। देव देवों की पूजा क्यों करें? परमदेव परमात्मा सब देवों के देव हैं। उनकी स्तुति, उनकी प्रार्थना, उनकी उपासना जगत् का अणु अणु करता है। दूसरे देवताओं का देवत्व इतना ही है कि उन की सुन्दरता में आंखों को स्नान कराएं और उनके उपभोग से जीवन को सफल करें।

देवताओं का देवताओं से व्यवहार हुआ करना है। अग्नि, सूर्य्य, जल, देव कहां हैं, यदि हम उसे देव न बनाएं। दरिया खेत डुबो दें, अग्नि सर्वस्व जला दे। हमारा सँयोग हुआ। आत्मदेव के नियम में आए, देव बन गए। यही हानि कारक दैत्य परोपकारक देवता बने खड़े हैं। एक नहीं, अनेक स्वर्ग रच लो।

मनुष्य अति चाहता है। तैंतीस करोड़ों से लजाए तो 'एकं ब्रह्म' पर उतर आए। कहां तो असंख्य देव माने थे, और कहां वस्तु ही एक रह गयी। प्रकृति मिथ्या, जीव मिथ्या, एक ब्रह्म सत्य। इस भ्रम ने और आंखें बन्द कर दी देव दर्शन तो क्या? अदेव दर्शन भी न रहा। आंख का काम अदर्शन हो गया।

ब्रह्माण्ड जैसा है, वैसा है। हृदय का ब्रह्माण्ड भौतिक ब्रह्माण्ड का स्थान नहीं ले सकता। दोनों को ओत प्रोत करने

से जहां वास्तविक ब्रह्माण्ड आत्मिक देवालय बन जाता है, वहां आत्मिक देवालय वास्तविक ब्रह्माण्ड से पृथक् नहीं होता। न भक्ति चक्षु शून्य होती है, न ज्ञान नीरस।

---

२. यज्ञ

लोग पद्य से उतरते हैं, परन्तु कोरो गद्य से काम नहीं चलता। आजका संसार गद्यमय है। कवियो की कल्पना को सोतों का स्वप्न कहकर शुष्क विज्ञान में जागृति ढूंडने चले हैं। परन्तु जो सच पूछो तो है बात बात में पद्य। उपमा और रूपक के बिना एक वाक्य नहीं कहते। भला संसार को संसार ही क्यों कहो? इसमें सृति है। गति है। यह कविता नहीं तो क्या है? और सब गुण भुलाकर सृति मात्र से संसार का कहना कहां का सूधा विचार है। लो और उदाहरण लो काम चलता है! भला काम भी चला करते हैं? जड़ में गति कैसी? बात बात में कविता भरी है।

संसार के लिये उपमाओं की ढूंड हुई। किसी ने कहा विवाह मन्दिर है। विवाह मन्दिरों में बराती निमन्त्रित होते हैं उनका काम दूसरों के व्यय से स्वयम् भोग विलास करना है। वह खाएंगे, पीयेंगे। यह चिंता औरों को होगी कि वृथा सैंकड़ों पर पानी फिरा जाता है। ऐसों की दृष्टि में संसार मोद का स्थान है। 'खा, पी, और मौज मना' इस तत्व की व्यवस्था मात्र ही मनुष्य का जीवन है। यूरोप वाले इसे

एपिक्यूरिमन और भारतीय इसे चार-वाक सिद्धान्त कहते हैं। वस्तुतः प्रत्येक जाति तथा विचार के समुदाय में क्रियात्मिक एपिक्यूरिमत और चारवाक खुले फिरते हैं।

एक और कवि वैराग्य वान् था। वह नित्य प्रति शव उठते देखता था। उसने संसार का श्मशान कहा। उसके विचार में न जन्म हर्ष का अवसर है न मरण का मनुष्य रोता हुआ उत्पन्न होता है और रोता हुआ यमदूतों की रखवाली मे कूच करता है। इस कमी ने मानव जाती को रोने का पाठ पढ़ाया। कभी नरक का अग्नि से, कभी यमको यातनाओं स डरा डरा कर अधीर आत्माओं को और अधीर किया भय तथा त्रास के अश्रुओं को मानो मुक्ति और सद्‌गति के बीज ठहरादिया।

कोई खिलाड़ी इन दोनों सिद्धान्तों पर हंस दिया। कहा संसार न रोने की जगह है न हंसने का। यहां का सुख भी उतना ही कड़वा है जितना कि दुःख। विषयभोग में में अनजानों को क्षणिक मात्र आनन्द तो होता है। पर पीछे की खिन्नता पहिले के स्वाद को किर किरा देती है। बहुत खाओ अजीर्ण होजावे। स्वाद की अति होने से स्वाद स्वादु न रहें तृप्ति का परिमाण नियत नहीं। आज छटाङ्क से मस्त है, ता कल पाव चाहिये। आखिर कहां तक ?

और जो शोक ही मे दिन बिता दिये। रोते प्रातः रोते सायं की। तो इस से हर्ष का वृक्ष कहां सिंच सकता है।

संसारमें तटस्थ रहना ही अच्छा। भौतिक जगत् भोगने के लिये नहीं, देखने के लिये है संसार एक नाट्य शाला है। इसका आनन्द दर्शक के भाग्य में है। क्रीड़ा पाज के लिये नहीं उपराम वृत्ति ही सात्विक वृत्ति है। मनुष्य से जितना हो सके अपनी वृत्तियों को सुकेड़े। वाणी की सफलता मौन धारण में हैं अङ्गहीन होना अङ्गों का यथार्थ प्रयोग है। कान रखता हुंआ करण रहित हो जाये। इन्द्रियां विक्षोभ का कारण हैं। प्रवृत्ति बन्धन की रस्सी है सुख चाहे शुभ हो चाहे अशुभ दोनों का परिणाम अशुभ है। सुख पूर्वक सुख का संग्रह नहीं होता।

आखिर संसार क्या है ? वर बधू विवाह है ? श्मशान है। नाट्य शाला है! क्याहैं! युधिष्ठर से यक्ष ने यह प्रश्न किया तो उत्तर दिया कि मैं संसार को कटाह पाता हूं : यह भौतिक अग्नि द्वारा तपाया जारहा है। इसमें धन धान्य आदि भोज्य वस्तुएँ पकती हैं और अन्त को काल को गाल में ग्रास बन कर जाता है।

संसार के वास्तविक रूप को कुछ कुछ युधिष्ठिर ने पहचान लिया। इस में अग्नि है। संसार साहस का स्थान है। कोई निवृत्त हो चाहे प्रवृत्ति, इस कटाह में तपोगे। कर्म शील कर्छा हाथ में लेकर कटाह को चलाएगा और जलने से बच जाएगा। निष्कर्म भोज्य पदार्थ की न्याई बलात् कटाह में धकेला जायगा। काम आओ अथवा काम करो। पको अथवा पकाओ इस के अतिरिक्त और विकल्प नहीं।

वेद में संसार को देवों का यज्ञ कहा है। यही संसार के लिये यथार्थ उपमा है। और संसार वासियों के लिये यथोचित शिक्षा भी। पुरुष सूक्त मे आया है:—

ओ३म् यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म शरद्धविः॥ य० १४।

अर्थात् देवता जिस पुरुष के साथ मिल कर हवि से यज्ञ करते है उसका वसन्त ऋतु घृत है, ग्रीष्म लकड़ी है, शरद् ऋतु हवि है।

इस मन्त्र मे ऋतुओं को यज्ञ की सामग्री कहा है। ग्रीष्म यज्ञ को तपाता है, वसन्त रस देता है। यज्ञ में घृत न हो तो यज्ञ शुष्क रहे। शरद् वृक्षों के फल फूल, पत्ते, पत्तियां झाड़ कर अपना सर्वस्व स्वाहा करता है। तब संसार की सृति होती है।

यज्ञ देवों का है। संसार में जो शक्तियां काम करती हैं देव है। अपने आप को इन देवों में मिलाने वाला नहीं, इनके देवत्व को देवत्व बनाने वाला मनुष्य देवो का देव हो जाता है। इन सब देवों की साझी आहुति से संसार का यज्ञ पूर्णता की प्राप्त करता है।

हवन के मन्त्रों में एक जगह पृथ्वी को 'देवयजनी' कहा है अर्थात् देवों के यज्ञ करने की जगह, एक और मन्त्र में आज्ञा है—

देवा यजमानश्च सीदत।

अर्थात् हे देवो! यजमान और तुम बैठो और इकट्ठे यज्ञ करो।

अभिप्राय यह है कि संसार यज्ञ है इसके अणु अणु में गति है। इस वृक्ष की पत्ती पत्ती कर्मशील है तो मनुष्य जिस का देह इन्हीं परमाणुओं से बना। जो इस समष्टि शरीर का व्यष्टि मात्र अंश ही है। वह भी बिना कर्म के नहीं रह सकता। प्राणियों का सम्पूर्ण जीवन यज्ञ है। इस यज्ञ में और आहुति न दो, प्राणों को कैसे रोकोगे। सफल वह आहुति है जो विधि पूर्वक हो। कोई उल्टी सीधी आहुति पड़ी नहीं और देव कुपित हुए नहीं। देव समर्थ हैं। उनका सह पक्षी होने में सर्व कल्याण और वैपक्ष्य में सर्वनाश है।

परमात्मा यज्ञ के ब्रह्मा हैं। उनके संकल्प के साथ अपना संकल्प मिलाना शिवसंकल्प होना है। स्वाहा वह आहुति है जो उनकी आहुति के साथ दी जाए। आगे पीछे दी हुई आहुति स्वाहा नहीं होती।

भारत के अन्न से अपने आपको अन्नाद बनाने वालो! भारत के प्राणों से अपने प्राण बचाने वालो! यज्ञ करो। भारत का वायु विष हो गया है क्योंकि तुम विप हो। भारत का जल नहीं रहा। गङ्गा बहती है और तुम्हें मुक्त नहीं करती। हिमालय खड़ा है और शिव के शत्रुओं का श्वसुराल बन गया है। देव बन कर यज्ञ में अपना सर्वस्व स्वाहा करो। देवता तुम्हें आशीष देंगे।

३. अग्नि

एक अग्नि भौतिक एक आत्मिक। भौतिक अग्नि चूल्हे में जलती है, कुण्ड में प्रदीप्त होती है, कलाओं को चलाती हैं, कहीं उष्मा और कहीं प्रकाश का कारण होती है। दो पदार्थ आपस में टकराते है। संघर्षण से गर्मी निकलती है। वैज्ञानिक कहते हैं विद्युत् है। याज्ञिक विद्युत् को अग्नि का रूप मानते हैं। परोक्ष रूप में विद्युत् स्थान में काम कर रही है। अणुओं का का गुण गति है। और गति और उष्मा सहवर्ती हैं।

प्राणियों का जीवन प्राणों की गति से है। जब तक प्राण चलते है शरीर में उष्मा बनी रहती है। प्राणों का तांता रुका और शरीर ठण्ढा हुआ। लोक में ठण्डक और मृत्यु पर्याय है।

यही प्रलय और सृष्टि का भेद है प्रलय में परमाणु सुप्त होते हैं। सुप्त लुप्त होना है सृष्टि परमाणुओं की प्रवृत्ति का नाम हैं। पहला कम्पन आधुनिक संसार का पहला जन्म अलग करो चलने परमाणु टकराते हैं। उनमें विद्युत घूम जाती है! यज्ञ चल पड़ता है।

ऐसे ही आत्मिक जगत् में उत्साह अग्नि है आलस्य मृत्यु जागृति जीवन हैं, सुषुप्ति मृत्यु है। आत्माभिमान जीवन, आत्म हानि मृत्यु। अग्नि शब्द जीवन के इन सब लक्षणों का पर्याय हैं। यह सोच कर पट्टी मुंह पर

मत बांधो कि श्वास प्रश्वास से प्राणी मरेंगे। चिऊंटियां कुचल जाने के भय से गुफ़ा में टिके रहने से अहिंसा व्रत का पालन नहीं होता। ऐसी अहिंसा जड़ पदार्थ कर लेते है। अहिसा में हिंसा का निषेध हैं तो इसके विरोधी धर्म्म रक्षा की भी विधि है। योगी वह है जो क्रियात्मिक धर्म का पालन करें। निष्क्रिय अहिंसा तो राख द्वारा भी पलित है उस पर चिऊंटियां चढ़ती है परन्तु उसमें शक्ति नहीं कि उनका वाल वांका कर सके। अग्नि जलने की शक्ति रखती परन्तु वचाव हैं भी उसी से होता है। शतघ्नी रणक्षेत्र में सैकड़ों का नाश करती है परन्तु इसी नाश से सहस्रों और लक्षों का त्राण हो जाता है। युद्ध जातीय जीवन का आवश्यक अंग है। क्षत्रिय अपना क्षय करता है दूसरे को त्राता है। यह रहस्य मुझे क्ष और त्र ने बताया। दुष्टों का संहार अहिंसा है आर्यों का परित्राण अहिंसा हैं। ऐसे ही सत्य ऐसे ही अस्तेय जव तक अग्नि है तब तक धर्म हैं। जव राख हुवे तव राख से अधिक कुछ नहीं।

यज्ञ का मुख्य देवता अग्नि है। वेद इसे हव्या वाट् कहता है। अर्थात् हव्य पदार्थ उठा ले जाने वाला। इसके बिना यज्ञ कीसफलता नहीं दूसरे देव अग्नि की बाट देखते हैं

हवन मंत्रों में से इसे "अन्नाद" कह कह पहिले तो इस तत्त्व की और सङ्केत किया है कि यह हव्य खा जाता है। पन्रतु किस निमित्त उसी श्वास में कहते हैं अन्नाद्याय अर्थात्

खाने योग्य अन्न देने के निमित्त। अग्नि देवताओं का दूत है हवि को अकेला आप चट नहीं करता। अन्य देवताओं तक पहुँचाता है। मुखिया होकर उनके सेवक का काम करता है। देवताओं द्वारा खाया हुआ यज्ञ फल रूप में यजमान को लौट आता है।

यथा ब्राह्मण वर्ण जातीय देह का मुख होकर उसके दिये धन धान्य को खाते हैं परन्तु स्वयं उसकी इति श्री नहीं करते ब्राह्मण के लिये स्वाद का दास होना हलाहल विष है। उसके खाये का उपयोग सारी जाति के लिये है।
स्वामी होकर सब का सेवक बनता हैं ऐसे ही अग्नि अपने उदरसे दूसरों की उदर पूर्ति करता है।

यज्ञ की उन्नतिशील यज्ञकी अग्नि सजग, यज्ञ की अग्नि पुनीत और पावन, यज्ञ की अग्निस्वयं प्रकाश दूसरों। के लिये प्रकाशमय यज्ञ की अग्नि अपने खाने के बहाने दूसरों को खिलाने वाली।

इस जोत के जगाने से यजमान की आत्मा में जलता पुरुषार्थ, जलता उत्साह, जलता तेज और जलती परोपकार की लगन आती है हम पर विश्वास नहीं तो यही कथन जलती ज्वालाओं की जाज्वल्यमान जिह्वाओं से सुनलो।

---

४. स्वाहा

स्वाहा सुन्दर आहुति हैं। वह आहुति जिस ऋतु अनुसार इस समय के रोगों को नाश करने के लिये डाली जाय। बुखार के दिनों में चिरायता, गिलोय इत्यादि ज्वर-नाशक पदार्थ हो। अन्य व्यधियों में उन्हीं के लिये उपयोगी सामग्री हो यह स्वाहा हैं।

सामग्री में मिष्ट, पुष्टि प्रद, रोग नाशक तथा सुगन्धि युक्त सभी प्रकार पदार्थ हों।

सौषधि सेवन तीन रूपों में होता है। एक तो ठोस वस्तुओं को पीस कर कूट कर, पाक बना कर दूसरा द्रव रूप अर्थात् जौंशादा तथा अर्क अथवा शर्वत की अवस्था में, तीसरे वायु में मिलाके, बाष्प तथा धूम के रूपमें।

पहिला प्रकार अतीव स्थूल है। इस से लाभ तो हैं परन्तु मल अधिक बनता है। इस विधि से सूक्ष्म विधि जलाकार है। फोग निकाल कर औषधि का सार पानी में हल कर देते हैं इस के प्रयोग से मल बनता है परन्तु थोड़ा। इस विधि से भी सूक्ष्म वायु रूप है। वायु का प्रवेश उन अङ्गों में हो सकता है यहां जल तथा पाक न जा सकें। यह लाभ भी हो जाय और मल भी न बने। रोग नाश का यह विधि उत्तम विधि है।

उदाहरण सौफों का सेवन ही ले लीजीये । सौफों के फाकने से उदर शुद्ध होता है। सौफों के अरक से भी यह काम निकल आता है परन्तु सुभीता अधिक रहता है । कहीं यह विधि न चल सके तो वैद्य रोगी के शरीर को कपड़े के अन्दर लपेट कर अन्य प्रकार के वायु को रोक कर सौफों की धूनी देते हैं। पसीने में मल निकल जाता है।

एमेरिका में बुखार के दिनों में उबला हुवा कीनीन नालियों में वहा छोड़ते हैं जिससे ज्वर नाशक वाष्प वायु में फैल जायें और रोग नष्ट हो।

पाठक इस तत्त्व को स्वयं जानता होगा कि ठोस से द्रव और द्रव से मारूत रूप अग्नि द्वारा प्राप्त होता है । अग्नि पर भट्टी चढ़ा कर अरक निकालते हैं और अग्नि का अधिक प्रयोग करके वाष्प बनाते हैं। यही यज्ञ है।

"हु" धातु का अर्थ दान है। सुन्दर आहुति सुन्दर दान है। जिस प्रकार संसार का उपकार यज्ञ द्वारा होता है वैसा किसी और प्रकार से नहीं होता। आहुति मारुत रूप में जगत् भर में फैल जाती है।

"हु" धातु का अर्थ खाना भी होता है । सो सुन्दर आहुति सुन्दर खाना भी है । ठोस तथा द्रव खाने से मारुत खाना अच्छा है । क्योंकि एक तो सूक्ष्म होने से सुगमतया ग्राह्य है। न बालक ही इससे नाक मुंह सिकोड़ता है न वृद्ध।

दूसरा मल रहित है। पहुंच भी नाड़ी नाड़ी नस नस में जाता है।

स्वाहा का तीसरा अर्थ है अच्छा कहा हुवा। स्वामी जी यज्ञ में स्वाहा शब्द के प्रयोग का प्रयोजन यह बताते हैं कि जो मन में हो वह वाणी में आए और जो वाणी में आये वह शरीर द्वारा अनुष्ठान किया जाये।

हवन में वेद मंत्र पढ़ने का विधान इस लिये है। अग्नि-होत्र का चिन्ह मात्र तो अब भी आर्य जाति में शेष रह गया है। कच्ची ईट पर जो शुद्ध मट्टी की बनी हुई हो, जंडी की दो शाखायें जला कर उस पर थोड़ा सा सुगन्धित पदार्थ डाल लेते हैं। वृद्धो यह क्रीड़ा क्यों करते हो। कहेंगे देवताओं की प्रसन्नता के लिए। अर्थ न देवों का आता है न प्रसन्नता का। वास्तव में अग्नि जल आदि ही देव हैं और इनकी शुद्धि प्रसन्नता कहाती है। संस्कृत में प्रसन्नता का अर्थ मल शून्यता है। शकुन मात्र शेष रहने का कारण यही है कि वास्तविक अग्निहोत्र के पूरे विधान तथा प्रयोजन का पता नहीं। स्वाहा सार्थक नहीं रहा।

अग्निहोत्र में जो मंत्र पढ़े जाते हैं उन मंत्रों में से एक एक में अग्निहोत्र का माहात्म्य, उसके लाभ विधि तथा फल को कविता के तत्त्वद्योतक प्रकार से दर्शाया गया है।

इन मंत्रों का रटन मात्र पर्याप्त नहीं। स्वाहा तो उस मंत्र के पीछे यथार्थ होगा जिसका अर्थ मन में स्फुरित हो

और उच्चारण जिह्वा से कियाजाय। तत्पश्चात् शारीरिक व्यवहार उसके प्रतिकूल न हो, अनुकूल हो। मन वाणी तथा काया के एक स्वर, एक ताल में आजाने को स्वाहा कहते हैं।

योगी का वचन निष्फल कहीं होता। जिस वाक्य की पुष्टि में, मानसिक दृढ़ता हो, वह अमोघ है। आधे से अधिक जगत् पर हमारे मन की शक्ति का राज्य है। प्रार्थना और सङ्कल्प वल शाली यत्न है। स्वामी दयानन्द समाधि में हैं। एक वैश्या उनकी पवित्रता नष्ट करने की इच्छा से जाती है। साहस नहीं होता कि योगी के व्रत का अनिष्ट चाहे। दूसरी वार वलात् भेजी जाती है तो वैश्यावृत्ति को ही छोड़ बैठती है।

सामूहिक सङ्कल्प संसार भर का तख्ता पलटने वाली सेना से बढ़ कर है। जहां अनेक मन एक सूत्र में पिरोये जाकर एक माला के दाने बन गये हों उनका एक जप, एक तप, एक समाधि तथा संयम हो वहां सो सिद्धि मनोरथ की परिचारिका होगी।

आज संसार मलिन है। अशुभ विचार, अशुभ आचार, अशुभ व्यवहार का राज्य है। इसका और क्या कारण है? यही कि संसार की सामूहिक कामना शुभ नहीं। आर्य यत्न करे तो वेदों के पठन पाठन वेदों के मनन निधिध्यासन से और नहीं तो अपनी २ गली से गाली गलोच, कलह कोलाहल लठनियां दोहे दूर कर सकते हैं।

गुरुकुल में बालक आता है। गन्दी गलियों का आवारा गर्द बच्चा गालियां बकता है। कोई स्पष्टतया इनका निषेध नहीं करता। समय बीतने यह स्वयं ही बकवाद छोड़ वेदभाषी हो जाता है। कारण कि वहां का वायु-मण्डल पवित्र है, आकाश वेदमय है।

मनुष्य का कहा वाक्य व्यर्थ नहीं जा सकता। बिना तार के और तार सहित शब्दों के एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने तथा ग्रामोफोन आदि यन्त्रों में सुरक्षित रहने से स्पष्ट है कि शब्द नष्ट नहीं होते हैं, वायु में अटक जाते हैं। और जो अन्तःकरण उस वायु में आता है उस पर प्रभाव डालते हैं।

एक महाशय एक स्थान का वर्णन करते हैं कि वहां बैठे हुवे मनुष्य के शिर पर से गुजरते हुवे कव्वे, चीलें तथा ऐसे और अबोध पक्षी तक "सोऽहम्" का उच्चारण करते थे। उस स्थान से पृथक् हुवे सो वहीं कांय २ चूँ चूँ परन्तु वहां फिर आये तो सोऽहम्।

उन्हों ने इसका निदान जानना चाहा! उन्हें बताया गया कि वहां तपस्वियों ने निरन्तर सोऽहम् का जाप किया है। किसी पाप के कारण पक्षी योनि प्राप्त होगई है। उनका साधारण आलाप तो उसी योनि विशेष का आलाप है। जब इस स्थान पर आए हैं तो पिछला अभ्यास स्मरण आता है और विवश सोऽहम कह उठते हैं।

इस समाधान से उनका सन्तोष न हुवा । अन्त में किसी योगी उसने उनकी शङ्काएँ निवृत्त की कि कथित स्थान किसी योगी की कुटी था । सदैव के जापसे सोऽहम् शब्द वहां के वायु में जम गया है जैसे ग्रामोफोन के रिकार्ड पर कोई भी सुई चलावो ! वही शब्द निकलेगा जो रिकार्ड की रेखाओं में रक्षित हैं । ऐसे ही इस स्थान पर जो भी शब्दोत्पादक कला लाई जावेगी ध्वनि वही सोऽहम् ही निकलेगी ।

सन्ध्या का समीचीन स्थान एकान्त है । आदि में जबकि अभ्यास नहीं सन्ध्या समूह सहित करनी चाहिये । जब चित्त वृत्ति एकाग्र हो जाए, और अकेले आंखें मूंदने पर संकल्प विकल्प व्याकुल न करें तो सन्ध्या मन में ही करनी उचित है । इसके विपरीत हवन सदैव समूह सहित करने का यज्ञ है । योगी भी हवन करें तो औरों में बैठ कर, और ऊंची स्वर से मंत्रों का पाठ करके । यदि आर्यसमाजी गली गली में यज्ञशाला निर्माण कराएँ और उसमें नित्यं प्रति देव यज्ञ का अनुष्ठान करें तो उनकी सम्मिलित स्वर इकट्ठे वेद मन्त्रोच्चारण, एक साथ आहुति प्रक्षेपण, एकीकृत संकल्प, एक क्रिया से जाति तो जाति, संसार भर का कितना भूला हो । अणु २ में वेद छा जाएँ घर २ में वेदों का नाद हो । भवन वेदमय हो जिह्वा वेदमय हो । देह वेदमय हो । आत्मा वेदमय हो ।

५. इदन्नमम

श्री कृष्ण गीता में कर्म के रूप बताते है एक स्वार्थ, दूसरा यज्ञार्थ। उनकी दृष्टि में स्वार्थ कर्म बन्धन का हेतु है और यज्ञार्थ कर्म मोक्ष का।

यज्ञ का अर्थ हम पीछे स्पष्ट कर चुके हैं। जो कर्म व्यक्तिगत लाभ के लक्ष्य से किया जाता है, वह स्वार्थ है, और जो समष्टि के कल्याणार्थ किया जाता है, वह यज्ञार्थ है।

समष्टि में व्यष्टि सम्मिलित है। व्यक्तियों से जातियां बनती हैं। जातियों के उत्थान से व्यक्तियां वञ्चित नहीं रहतीं। स्वार्थ सिद्धि यज्ञार्थ से स्वतः होती है। वस्तुतः स्वार्थ और यज्ञार्थ में भेद नहीं। संकल्प भेद तो है परन्तु क्रिया एक ही है।

कोई रोटी खाता है इस लिये कि मैं मोटा होजाऊं, कोई मोटा होता है इस लिये कि मैं जाति की रक्षा करूं। पहला स्वार्थी है, दूसरा यज्ञार्थी है।

यथार्थ स्वार्थ यज्ञार्थ है। मनुष्य समाज की रचना ऐसी है कि जातियों के उठाए बिना व्यक्तियां उठ नहीं सकतीं। एक आङ्गल व्यक्ति का संसार भर में वही अधिकार है जो उसके उसके देश ने अपने गौरव से प्राप्त किए हैं। भारतवासियोंका भारत दण्डपद्धति अमरीका में भी पीछा नहीं छोड़ती। गोखले को तुम नीतिज्ञ कहो, बुद्धिनिधि कहो, दक्षिण अफ्रीका में

में कुलियों का राजा कहाता है। व्यक्तिगत आचार को कौन पूछता है। अन्य देशों में भारतीय भारतीय होने के कारण undesirable अशुभ हैं। रवीन्द्र जगत् भर के बड़े कवि हैं। पूर्व पश्चिम में पूजे जाते हैं। परन्तु किसी स्वाधीन जाति के महा कवि की तरह गर्दन सीधी करके नहीं चल सकते। कोई लखपति हो। देश दरिद्र है, तो उसका धन भी अपने देशवासियों के ही परिमाण के अनुसार प्रचुर होगा। उन देशों के धनपतियों का साम्मुख्य यह नहीं कर सकता जहां सामान्य जनता लाखों में लेटती है।

मूर्खों में विद्वान् विद्वान् न रहेगा। विद्या की वृद्धि विद्या प्रचार से होती है। धन की तरह यह सम्पत्ति प्रयोग से बढ़ती है। भारत को धन धान्य से दरिद्र किसने किया। कृपणता ने। भारत का गुण ज्ञान क्यों धूलि धूसरित हुआ। कृपणता से। अपना कौशल लोगों से जितना छिपाओगे, उतना तुम से छिपेगा। वैभव विभु है। खुली हवा में बढ़ता फूलता है। संकुचित स्थान में इस का दम घुटता है।

परमात्मा सब के हैं, तू सब का हो। भक्त कहते हैं, अपने जीवन की डोर प्रभु के हाथ में दे। और स्वयं अपने इष्ट, अनिष्ट से निश्चिन्त हो जा। क्या इसका यह अर्थ है? स्वयं धनोपार्जन छोड़ दे। तुझे परमात्मा धन देंगे? रोटी न खा न पका, परमात्मा तेरी रोटी खा छोड़ेंगे।

परमात्मा स्वयं सजग है, और सजगों का ही साथ देते हैं। अन्धों को लाठियां परमात्मा ग्रहण नहीं करते। परमात्मा की इच्छा का जो मार्ग है वही शुभ है। किसी मनोरथ से, किसी उद्देश्य से संसार का यज्ञ सम्पादित होता है। मनुष्य का कल्याण इसमें है कि उस मनोरथ को जाने, उस उद्देश्य को स-परमात्मा के मन्त्रोच्चारण के साथ २ अपना मन्त्रोच्चारण करे, उनकी स्वाहा पर अपनी तन मन की आहुति डाले। एक २ आहुति पर 'इदन्नमम' कहे। अर्थात् यह आहुति मेरे अपने लिये नहीं है। 'इदमग्नये, इदं सोमाय' का अर्थ परमात्मार्पणहै। परन्तु 'अग्नये' कहनेका यह अर्थ नहीं कि 'अग्नि'को उत्तरदाता बना कर स्वयं उत्तरदातृत्व से मुक्त हो जाए। जीवों के संपाद्य कार्य जीवों को करने हैं। परमात्मा उनका स्थान नहींलेते। हां! परमात्मा की आज्ञा समझ कर अग्नि की ज्वाला को देख कर डाली हुई आहुति सफल होती है।

परमात्मा का नाम लेने से जहां स्वार्थ वृत्ति का नाश होता है, वहां यज्ञार्थ वृत्ति आजानी चाहिये। स्वार्थी को अपनी चिन्ता है, यज्ञार्थी को सारे ब्रह्मांड की। यह न हो कि अपनी चिन्ता भी छोड़ बैठो और ब्रह्मांड की भी चिन्ता न करो।

स्वामी दयानन्द 'इदन्न मम' का यथार्थ अर्थ समझे हैं। आर्य समाज के पहले पांच नियम स्वार्थ के लक्ष्य से हैं, तो अन्तिम पांच यज्ञार्थ के लक्ष्य के हैं।

यथा—नियम ६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

नियम ७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार बर्तना चाहिए।

नियम ८. अविद्या का नाश विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

नियम ६. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

इससे और स्पष्ट सामाजिक सिद्धान्त क्या हो। लोग स्वार्थ छुड़वाते हैं। स्वार्थ छूटता नहीं। स्वामी यज्ञार्थ को यथार्थ स्वार्थ बताता है। यही अर्थ 'इदन्न मम' का है। अर्थात् यह आहुति एक मेरी नहीं, सब की है, और सब में मेरी है।

ममता और अहंकार के शत्रु संसार भर में विद्यमान हैं। क्या समाचार पत्रों और क्या व्याख्यान-वेदिकाओं सब में इसी तुरी का नाद है कि ममता छोड़ो, अहंकार का बीज न रखो। तथ्य यह है, श्रोता तो श्रोता लेखक तथा वक्ता भी तो ममता और अहंकार के अवतार हैं।

ममता नहीं छूट सकती, अहंकार का नाश नहीं हो सकता, पर बढ़ाने की वस्तु है। विशाल मम अपवाद के योग्य मम नहीं रहती। संकुचित अहम् मोह है, अभिमान है। विस्तृत

अहम् बैराग्य, है, नम्रमा है। परमात्मा के संकल्प को जान कर जब अपना संकल्प उस के अनुकूल कर दिया, जब अपनी आहुति उस की स्वाहा सुन कर स्वाहा को, तो फिर 'इद-मग्नये' और 'इदं मह्यम्' में भेद न रहा।

समूह में अपने आप को मिला देना अपना और समूह दोनों का भला करना है। समिति को अपनी सुयोग्य सम्मति देना समिति का हित करना है। जाति से अपना अभाव करना जाति को जहां तक अपने जीवन का सम्बन्ध है उतना मृत करना है। सब व्यक्तियां अपने आप को जाति से अलग कर दें तो जाति न रहे। परन्तु सम्मति देकर उस पर हठ करना, दूसरों के युक्त मत को भी लताड़ कर अपने यज्ञ को जय चाहना संकुचित ममता है। स्वामी जी कहते हैं—

नि० १०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

यही सिद्धान्त एकता प्राण है।। सर्व हितकारी नियमों में व्यक्तियों की पारस्परिक परतन्त्रता सामाजिक तथा जातीय स्वतन्त्रता है। तभी तो एक २ आहुति पर "इदन्न मम" "इदन्न मम" कह कर यज्ञ को समूहसात् बनाया जाता है व्यक्तिसात् नहीं।

---

६ यज्ञ शेष

यज्ञ से जो भोज्य पदार्थ बचे उसको यज्ञ शेष करते हैं। इसे शास्त्रों में अत्युत्तम भोजन कहा है। हव्य देवताओं का भोज्य है। अपने से उत्तम भोज्य देवताओं के अर्पण करना होता है। यह नहीं कि आप तो खीर खाई और खाली पिच के पिंड बनाकर देवों के गाल में डाल दिया।

यहां न ब्राह्मणों के कल्पित देव हैं न पितरों के पिंड ही उन का आहार है। यज्ञ संसार चक्र है। जाति तथा समाज का हित साधन ही वास्तविक यज्ञार्थ कर्म है। यही वस्तुतः देवताओं का अर्चन है॥ ३३ करोड़ देवता भारत की ३३ करोड़ प्रजा है। मानुषीय जीवन का प्रथम साध्य जातीय हित है। तभी तो स्वामी जी कहते हैं—संसार का उपकार करना आर्य-समाज का मुख्योद्देश्य है। इससे जो बच जाय वह व्यक्तित्व है। जाति पहिले, व्यक्ति पीछे।

रामायण में लक्ष्मण ने अकेला मिष्टान्न खाना पातक गिना है। वेद में आता है—**केवलाघो भवति केवलादी।** अर्थात् अकेला भोजन करनेवाला केवल पापान्न खाता हैं। मनुस्मृति तथा गीता इस सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं। कमाई वही सफल हैं जिस में औरों का हिस्सा हो।

वाइसराय की कौंसिल में भारतीय प्रतिनिधियों को यह उलाहना मिला कि क्या तुम स्वराज्य इस लिये चाहते

हो कि जिन अब्राह्मणों को तुम अपने कुए का पानी पीने नहीं देते, अपनी दरी छूने नहीं देते, अपने देवता पूजने नहीं देते उन पर और अत्याचारों का अवसर पाओ ? अब वह यथा तथा जीते तो हैं। फिर उनका जीना भी बाधित करना चाहते हो ? यज्ञ शेषभोजी मालवीय उठे और कहा कि ब्राह्मणों की ओर से मैं वकील होता हूं। पहिले अब्राह्मणों को स्वराज्य दे लो। जो बचेगा हम खा लेंगे। यही यज्ञ-शेष है। जाति तथा समाज का अङ्ग होता हुआ भी मनुष्य अपने व्यक्तित्व के आगे आंखें नहीं मूँद सकता। अहंकार को कितना विशाल रूप दो। सारे जगत् को 'अहम्' दृष्टि से देखो। एक विन्दु अवश्य ऐसा रह जाएगा जो व्यष्टि को समष्टि से अलग दिखाएगा। क्या उस बिन्दु की उपेक्षा करलें। सम्पूर्णवृत्त, संपूर्ण चक्र के घुमाव में विन्दु का प्रभाव अलग है। सूर्य सौर ब्रह्माण्ड को घुमाता है। परन्तु उसकी अपनी केन्द्रानुवर्तिनी गति भिन्न है। ऐसे ही जातीय तथा मानुषीय उन्नति पर अलग भी ध्यान देना होता है। जाति के पेट के साथ २ अपना पेट भी भरना है। अपने हित को रोकना नहीं किन्तु जातीय हित से अपना हित गौण रखना है ? पढ़ाने वाला-पढ़ाता तो जाय परन्तु अपनी पाठोन्नति न रोके। धन दे पर साथ २ कमाए भी। सूर्य स्वयं न फिरे तो जगत् को भी फिरा न सके।

राष्ट्रीयता तथा जातीयता का प्रादुर्भाव तब होगा जब

उदर देव से पहले रुद्र देव को अपने लहू से तृप्त किया जायेगा। आक्षेप करने वाले कहते हैं, पुरातन आर्य यज्ञों में गौ की, बकरी की, पुरुषों की, अश्वों की, और अपनी आहुति देते थे। आर्य सहम जाते हैं और कह उठते हैं 'नहीं। हम तो अहिंसक हैं'। हमारी दृष्टि में यज्ञ में अर्थात् जाति की रक्षार्थ पशु, पक्षी, बालक, बालिका, मित्र, अमित्र सब की बलि हमारे पूर्व पुरुष देते थे और हमें देनी चाहियें। सबसे उत्तम, सबसे प्रबल, सबसे प्रभूत तर शक्तियां जाति के पहिये में लगादो। जो बल बच जाय, वह अपनी ऋद्धि सिद्धि में प्रयुक्त करो। देवताओं का दिया हुआ खाओ वह उत्तम प्रसाद है।

---

७ सर्वं वै पूर्णं ॐ

यज्ञ समाप्त हुआ। अब पूर्ण आहुति दिया चाहता है। देखले अग्नि बुझ तो नहीं गई ? मन्त्रों का ठीक उच्चारण हुआ ? स्वाहा सार्थक है ? आहुतियों में इदन्नमम का भाव रहा ? यज्ञ शेष खाने से पहले यज्ञार्थ कृत्य पूर्ण कर।

मन्त्र व्याख्या

गत पृष्ठों में यज्ञ के प्रत्येक अङ्ग का आध्यात्मिक विचार किया गया है। इसका अभिप्राय कहीं यह न समझा जाय कि विना कुण्ड तथा वेदी बनाए, तथा आहुति दिये, काल्पनिक कुण्ड में काल्पनिक यज्ञ किया जा सकता है। मानसिक हवन की स्थिरता क्रियात्मिक हवन के बिना नहीं हो सकती। भारतीय विचार शैली में यह बड़ा दोष है कि मन की एकाग्रता के बहाने वास्तविक संसार से आंखें मूँद लेते हैं। मन का संयम अलौकिक अभ्यास है। यह भारत की पैतृक पूंजी है। इसे त्यागने की आवश्यकता नहीं। किन्तु अलौकिक से लौकिक बनाने की आवश्यकना है। संसार से सम्बद्ध सर्वोत्तम समाधि है।

आगामी पृष्ठों में हम उन मन्त्रों की व्याख्या करेंगे जिन से नित्य का हवन किया जाता है। यह हवन करते हुए उपर्युक्त तत्त्व का दर्शन करना वास्तविक तत्त्वदर्शन है। इसके बिना न भौतिक जीवन सिद्ध होगा न तत्त्वदर्शन ही हो सकेगा। बिना माया के ब्रह्म भी भ्रम मात्र रह जायगा।

विधि

आर्यसमाजियों को हवन दूभर हो रहा है। किसी को समय के आभाव से वाधा है किसी को धन के व्यय का भ्रम

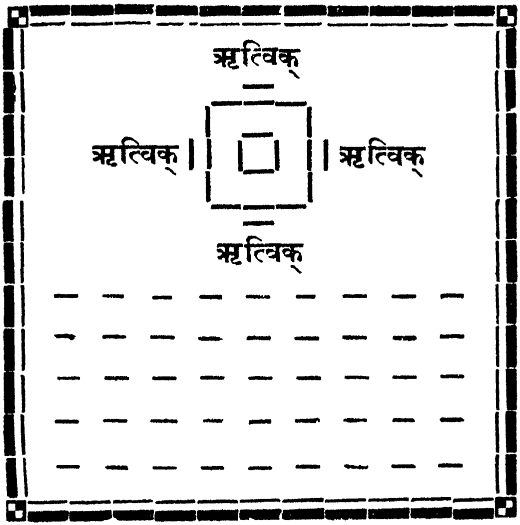
है। वास्तव में यह दोनों भ्रम काल्पनिक हैं। जितना अग्नि होत्र न्यून से न्यून करने की विधि है, उस में तो कोई पांच सात मिनट समय और कोई डेढ़ छटांक भर सामग्री वाञ्छित है।

पञ्चमहायज्ञ विधि तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में प्रातः काल के लिए चार विशेष आहुतियां 'सूर्योज्योतिः' इत्यादि मन्त्रों से और सायंकाल की चार विशेष आहुतियां 'अग्निर्ज्योति' इत्यादि मन्त्रोंसे और पांच दोनों समयकी सामान्य आहुतियां 'भूरग्नये' इत्यादि मन्त्रों से देनी लिखी हैं। इन के अतिरिक्त ३ पूर्णाहुतियां होती हैं।

अतः जो एक समय दोनों समयों का हवन करते हैं उनके लिए सारी मिल कर सोलह आहुतियां और जो दो समय हवन करने हैं उनके लिए सारी २४ आहुतियां हुईं। इसमें न बहुत व्यय लगता है न समय। आहुति का परिमाण हव्य तथा घृत मिला कर ६ माशे है। (देखो सत्यार्थप्रकाश बारहवीं आवृत्ति पृ. ३६) जो इससे अधिक समय देशके और खर्च को सामर्थ्य रखता हो वह आचमन अङ्गस्पर्श, अग्न्याधान, जल सिञ्चन तथा आधारावाज्याहुतियां दे।

और समय हो तो ईश्वरस्तुति, स्वस्ति वाचन, शान्ति पाठ कर लिया करे। इससे बढ़े तो सारे वेद मन्त्रों को स्वाहान्त कर के आहुतियां दे सकता है।

हवन का समय सूर्योदय से पीछे और सूर्यास्त से पूर्व है। यदि किसी कारण से सायंकाल हवन का समय अतिवाहित हो जाय तो मन्त्रों का उच्चारण तो अवश्य करले जिससे नियम टूटने न पाए। और अग्निप्रदीपन न करें। इस में कीड़ियां गिरेंगी तो पाप होगा। अग्नि सामूहिक हवन हो तो यज्ञशाला में बैठने का नियम यह है।



यज्ञ के उपकरण तथा उन का प्रयोग

(पञ्च महायज्ञ विधि से उद्धृत)

इसका आचरण इस प्रकारसे करनाचाहिये कि सन्ध्योपासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है। इसके लिये

सोना, चाँदी, ताम्बा, लोहा वा मट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिए जिसका परिमाण १६ अंगुल चौड़ा, १६ अंगुल गहरा और उसका तला चार अंगुल लम्बा चौड़ा रहे। एक नमसा समिधा के लिए रख लेवें। पुनः घृत को गर्म कर छान लेवे। और १ सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर पीस के मिला कर उक्त पात्र के तुल्य दूसरे पात्र में रख छोड़े। जब अग्निहोत्र करे तब शुद्ध स्थान में बैठ कर पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे। जल के पात्र में जल और घी के पात्र में एक छटांक वा अधिक जितना सामर्थ्य हो उतने शोधे हुए घी को निकाल कर अग्नि में तपा कर सामने रख लेवे। पुनः उन्हीं पलाशादि वा चन्दनादि लकड़ियों को वेदी में रख कर उन में आग धर कर पंखे से प्रदीप्त कर एक २ मन्त्र से एक २ आहुति देता जाय।

जिसकी दण्डी १६ अंगुल और उसके अग्रभाग में अंगूठा की यव रेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा आचमनी के समान बनवा लेवे सो भी सोना चांदी व पलाशादि लकड़ी का हो। एक आज्य स्थाली अर्थात् घृतादि सामग्री रखने का पात्र सोना, चांदी व पूर्वोक्त लकड़ी का बनवा लेवे। एक जल का पात्र तथा एक चिमटा और पलाशादि की लकड़ी

———

१. अमृतपान

१. ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।

अर्थः—(ओ३म्) हे परमात्मन्। आप (अमृत-उपस्तरणम्) अमृत के फैलाने वाले (असि) हैं। (स्वाहा) यह वाक्य सुन्दर है। इस मन्त्र से एक आचमन करे—

२. ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।

अर्थः (ओ३म्) हे परमात्मन्? आप (अमृतापि धानम्) अमृत के धारण करने वाले (असि) हैं। (स्वाहा।) यह वाक्य कल्याण कारी है इस मन्त्र से दूसरा आचमन करे।

३. ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम् स्वाहा।

तैत्तरी प्र० १० अनु०

अर्थः—(ओ३म्) हे परमात्मन्! (सत्यं) सच (यशः)-यश (श्रीः) शोभा और (श्रीः धन (मयि) मुझे (श्रयताम्) प्राप्त हों। (स्वाहा) यह वाक्य ठीक प्रकार कहा गया। इससे तीसरा आचमन करे।

आचमन से अभीष्ट शान्ति होती है। सो तीन प्रकार की है। आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा संबन्धिनी, आधिदैविक अर्थात् इन्द्रियों तथा मनसे सम्बन्धिनी और आधिभौतिक अर्थात् भौतिक जगत् तथा शरीर संबन्धिनी। तीन वार आचमन इसी लिये करते हैं कि एक २ करके तोनों प्रकार की शान्ति का ध्यान तथा प्रार्थना की जाए।

अमृत का अर्थ यहां आनन्द है। परमात्मा आनन्द स्वरूप है। सारे संसार को आनन्द देने वाले हैं। आनन्द धाम हैं। सब आनन्द उन्हीं के आश्रय हैं। संसार का विस्तार उन का यश है। उनकी शोभा तथा कीर्ति अणु २ के मुखसे गान की जारही है। वह शोभा दिखाये की नहीं। उसका आधार सत्य है। तभी तो वह आनन्ददायिनी है।

परमात्मा के उन गुणों का गान करते हुए मनुष्य अपने लिये आनन्द का संचय करता है। परमात्मा को अमृत का पुंज कह कर अमृत का घोंठ चढ़ाता है। जल शान्ति प्रद औषध है। शारीरिक रोगों का शमन, मानसिक विकारों का दमन तथा आत्मा परमात्मा का सम्मेलन जल द्वारा ही होता है। शारीरिक लाभ तो पानी के इतने हैं कि वेद कहता है—

अप्स्वन्तर्विश्वानि भेषजः।

अर्थात् पानी में सब औषध हैं। यह जल-चिकित्सकों की धारणा है। मानसिक रोग क्रोध, क्लेश, काम आदि भी जल ही से शान्त होते हैं। दो घोंट ठंडे जल के पान तथा हस्त पाद प्रक्षालन से सब विकार ठंडे पड़ जाते हैं। इससे भी सन्तोष न हो तो सबही उपद्रवों को मिटा देता है।

परमात्मा का स्मरण कराने का जल ने मानो ठेका लिया है। और किसी समय ध्यान न आये, जहां दो चुल्लू पानी सिर पर पड़ा, वहीं परमात्मा का पुनीत नाम जिह्वा पर आ गया।

अमृतपान का रस वस्तुतः अमृत होना चाहिये। अर्थात् उस में कोई मल तथा अशुद्धि नहीं। कुवों में चावल तथा आटे के पिंड डालने की प्रथा अतीव कुत्सित है। इससे जल जहां दुर्गन्धि-युक्त होता है, वहां रोग के क्रिमियों का क्रीड़ा-स्थल बन जाता है। पानी उबाल कर ठंडा कर लिया जाए तो बहुत लाभकारी है।

---

२ अंगस्पर्श

१. ओ३म् वाङ् म आस्येऽस्तु।

अर्थः-(ओ३म्) हे नाथ-पते। (वाक्) बोलने की शक्ति (मे) (मेरे) (आस्ये) मुख में (अस्तु) हो।

२. ओ३म् नसोर्मे प्राणो अस्तु।

अर्थः—(ओ३म्) हे प्राणेश्वर! (मे) मेरे (नसोः) नथनों में (प्राणः) प्राण (अस्तु) हो।

३ ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु।

अर्थः—(ओ३म्) हे सर्व द्रष्टः! (मे) मेरे (अक्ष्णोः) आंखों में (चक्षुः) देखने की शक्ति (अस्तु) हो।

४ ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु।

अर्थः—(ओ३म्) हे सर्व श्रोतः! (मे) मेरे (कर्णयोः) कानों में (श्रोत्रम्) सुनने की शक्ति (अस्तु) हो।

५ ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।

अर्थः—(ओ३म्) हे महाबलिन् ! (मे) मेरे (बाह्वोः) बाहुओं में (बलम्) बल (अस्तु) हो ।

६ ओ३म् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ।

अर्थः—(ओ३म्) हे महौजस्विन् ! (मे) मेरी (ऊर्वोः) जंघाओं में (ओजः) ओज (अस्तु) हो ।

७ ओ३म् अरिष्टानि मे ऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।

अर्थः—(ओ३म्) हे रोग विनाशक ! (मे) मेरे (अङ्गानि) अङ्ग (अरिष्टानि) अटूट विकार रहित तथा (मे) मेरे (तनूः) तीनों शरीर (तन्वा सह) फैलाव वाले (सन्तु) हों ।

बाईं हथेली में जल लेकर दाएं हाथ की मध्यमा अर्थात् बीच वाली अंगुली और अनामिक अर्थात् उसके साथ वाली अंगुली को उस जल में भिगोते जाएं और जिस अंग का नाम मन्त्रों में आए, उसे छूते जाएं । अन्तिम मन्त्र में सब अंगों का नाम आया है । उसे पढ़कर जल देह पर छिड़कें ।

अंगस्पर्श में बल की याचना होती है अन्तिम मन्त्रमें "अरिष्टानि" तथा 'तन्व सह' शब्दों से अंगों का नैरोग्य तथा फैलाव स्पष्टतया मांगा है ।

मुख्य २ अंगों का उल्लेख कर सारे शरीर के लिए बल की याचना की है । हम ने **संध्या रहस्य** में जताया है कि प्रार्थना

प्रतिज्ञा है। जो वस्तु परमात्मा से मांगी जाए उसकी उपलब्धि का स्वयं यत्न करना है। मन्त्रों के पीछे स्वाहा का यही तात्पर्य है। जो बात कह कर कार्य में न लाई जाए वह ठीक प्रकार नहीं कही गई। वह स्वाहा नहीं।

सन्ध्या रहस्य में उन साधनों का विस्तृत वर्णन आया है जिनके प्रयोग से अंग पुष्ट होते हैं। पाठक को उस पुस्तक का अंग स्पर्श प्रकरण अवश्य पढ़ लेना चाहिए।

जल लगाने का अभिप्राय शुद्धि की प्रार्थना है। बल के साथ २ अंगों की निर्मलता तथा इन्द्रियों की वृत्ति की निर्दोषता आवश्यक है। देखो सन्ध्या रहस्य का मार्जन प्रकरण।

---

३. अग्नि–आधान

ओं भूर्भुवः स्वः गोभिल गृ. प्र. १। खं. १ सू. ११

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (भूः) प्रणस्वरूप अर्थात् जगत के जीवन के हेतु (भुवः) अपान अर्थात् मल नाशक (स्वः) और सुखवर्धक तथा तेजः प्रसारक हैं। अग्नि में भी गौणरूपेण यह गुण है।

यह शब्द कह कर कपूर में अग्नि लगावे।

१. ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥ यजुः ३, ५

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (भूः) जगत्प्राण (भुवः) दुःख नाशक (स्वः) सुखस्वरूप (भूम्ना) बड़ाई में अर्थात् व्यापकता में (द्यौः) आकाश (इव) जैसा और (वरिम्णा) धारण धर्मरूप श्रेष्ठता में (पृथिवी) पृथिवी (इव) जैसा है। परमात्मा की व्यापकता तथा धारणारूप शक्ति को आकाश तथा पृथिवी की उपमा देकर यहीं तक परिमित नहीं किया किंतु उस की सर्वव्यापकता के ध्यान का सूधा मार्ग बताया है जैसे आकाश अर्थात् स्थान अपने बीच रहने वाले अणुओं में भी व्यापा हुआ है। ऐसे ही परमात्मा ब्रह्माण्ड भर में विद्यमान है। उस की सत्ता सब सत्ताधारियों में है और वह स्वरूप से उन से पृथक् नहीं है।

(पृथिवी) हे पृथिवी (देवयजनि) देवताओं की यज्ञ-वेदि (तस्या) उस (ते) तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (अन्नादम्) अन्न अर्थात् हव्य खाने वाले (अग्निं) अग्नि को (अन्नाद्याय) खाने योग्य अन्न के लिये (आदधे) स्थापित करता हूं।

संसार रूपी यज्ञ की वेदी पृथिवी है। उस पर ब्रह्माण्ड भर की दिव्य शक्तियां यज्ञ करती हैं। वायु तथा अग्नि, सूर्य, तथा चन्द्रमा किरणों के चमसों से यथा सामर्थ्य आहुति दे रहे हैं। देवों के देव परमात्मा इस यज्ञ के ब्रह्मा हैं। उस महा-यज्ञ का छोटा रूप यजमान का यज्ञ है। जो यह यज्ञ करते हैं, वह भी देव हैं अर्थात् सज्जन, ईश्वरानुरागी।

अग्नि का काम है यज्ञ को खा लेना। इस की चारों

और लपकती जिह्वाओं को देखो। क्षण भर में सारी सामग्री को भस्म करती हैं। ऐसे उदरंभर को उद्दीप्त करने और उसे घृतोपहार देने की आवश्यकता? कहते हैं 'अन्नाद्याय' खाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिये ऐसा किया जाता है। अग्नि सत्ययुगी ब्राह्मण है। अपने लिये कुछ नहीं खाता। जो खाता है उस से दसगुणा संसार को देता है। वायु में औषधियों का रस पहुंचा कर नैरोग्य का विस्तार करता है। हव्य को मेघमिश्रित कर आनन्दप्रद वृष्टि करता है। आकाश में उष्णता लाकर वनस्पति की वृद्धि करता है। अग्नि के मुख में डाला हुआ अन्न तो यों समझो कि ऊर्ध्वमुखी पृथिवी में बीज ही छिड़का है।

कोई कहेगा इतने बड़े आकाशमें हव्य की मुट्ठी स्वाहा हुई, न जाने कहां लुप्त हो जाएगी। कहते हैं— परमात्मा भी विस्तृति आकाश के साथ २ है। क्रिया कर्म और छिड़का बीज निष्फल न होगा। न पृथिवी उस को पचा सकती है आकाश उड़ा सकता है।

अग्नि—प्रबोध

३ ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वामिष्टापूर्ते स ँ सृजेथामयं च। अस्मिन्त् सधस्थ अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

य० १५।५४॥

(औ३म्) परमेश्वर को साक्षी कर (अग्ने) हे विद्वान् उद्बुध्यस्व) उठ (प्रतिजागृहि) जाग (त्वम्) तू (च) और (अयं) यह अग्नि (इष्टापूर्ते) यज्ञ कर्म मे (ससृजेथाम्) मिलो। (अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) उत्तम (सधस्थे) यज्ञ स्थान में (विश्वे) सब (देवा) विद्वानो ! (अधिसीदत) मान पूर्वक बैठो।

आलस्य त्याग का अनुपम उपदेश है। अग्नि सजग है। उसे प्रमाद नहीं। वह यज्ञ करने मे तन्द्रारहित है। यजमान को भी तन्द्रारहित होजाना चाहिये। उत्साह शून्य हृदय राख की मुट्ठी है। अग्नि के साथ जागना अपने मे अग्निप्रदीप्त करना है। भले कामों मे आलस्य अपनी सत्ता का नाश है।

संसार यज्ञ का स्थान है। वेद कहता है—**ईशावास्य मिदं सर्वम्**। यह सब ईश्वर के रहने योग्य है। संसार का त्याग मूर्खता है। ऐसा सुन्दर स्थल कहां है। देवता कार्य्य क्षेत्र में आते हे। दानव पचाव के बहाने से काम करने से भागते हैं।

मनुष्य की स्थिति इस जगत् मे गौरव की स्थिति है। हम यहां आत्माधिकार से बसते हे। जहां मान नही, वह जीवन नहीं। गिड़गिड़ाने तथा शिर झुका कर बैठने वाले यज्ञ नहीं किया करते। आत्माभिमान छोड़ कर आत्मा की रक्षा नहीं होता। यज्ञ की बैठक ही संसार मे विचरने की विधि का उपदेश देती है।

यह शिक्षा तो स्वतः ही होगई कि यज्ञ का स्थान सुहावना होना चाहिये। कहा भी तो है—यह स्थल "उत्तर' है अर्थात् अच्छा। जहां संसार को देवों का यज्ञ स्थल समझना है, वहां अपनी यज्ञशाला को तो देव भूमि बनाए विना यज्ञ यज्ञ ही नहीं रहता।

---

४. समिदाधान

१. ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने-ध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभि-र्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

इस मन्त्र से एक समिधा जो घी में भिगो रक्खी हो अग्नि में डालो।

(ओ३म्) हे परमात्मन् (जातवेदः) उत्पन्नों में विद्यमान अग्निवत् प्रकाशक परमेश्वर ! (अयं) यह मेरा (आत्मा) आत्मा (ते) तेरे लिये (इध्मः) ईंधन है। (तेन) उससे (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्धस्व) बढ़, (च) और (इद्ध) प्रदीप्त कर (वर्धय) बढ़ा। (च) और (अस्मान्) हमें (प्रजया) प्रजा से (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) ब्राह्म तेज से (अन्नाद्येन) खाने योग्य अन्न से (सम्) भली

प्रकार (एधय) समृद्ध कर । (इदं) यह आहुति (अग्नये) परमेश्वरार्पण है । (इदं) यह (मम) मुझ एक की (न) नहीं।

उधर अग्नि में लकड़ी डालते हैं, इधर आत्मा को परमात्मा के समर्पण करते हैं। लकड़ी से अग्नि प्रदीप्त होती है और उसे प्रदीप्त करती है । परमात्मा का प्रकाश बढ़ता घटता नहीं। परन्तु प्रकाश का काम क्या जब प्रकाश्य न हो। जीवों की दृष्टि से तटस्थ होने पर परमेश्वर का प्रकाश अधिकाधिक प्रकट हाता है।

ऐसी उच्च वृत्ति के योगी के लिये भी जो आत्मा को परमात्मा की ज्योति का ईन्धन बना चुका है, संसार के पदार्थ हेच नहीं। वह प्रजा मांगता है। ब्रह्मवर्चस् अर्थात् आत्म--ज्ञान और आत्मिक ज्योतिः मांगता है। फिर मांगता है—खाने योग्य अन्न।

ऋषियों ने यजमान को निरा पेटू नहीं बनाया। किन्तु यह तथ्य अवश्य झलकाया है कि योगी का भी पेट होना है। इसे भी भूख लगती है और उसे भ्रान्ति झह देने से शान्त नहीं होती।

परमात्मा की हम सब प्रजा हैं। तत्स्थं होने का तो सूधा मार्ग यही है कि हम प्रजावान् हों। परमात्मा पशुपति हैं। पाशुपत्य हमारे योग की सिद्धि है। वह महावर्चस्वी हैं। हमारी उपासना वर्चस्वी होने में है। अन्न के साथ अद्य क्या लिखा, अन्न का यथार्थ रूप बताया। रुपया धन नहीं। नोट

कागज़ी वस्तु हैं। सुवर्ण का वर्ण सुन्दर है परन्तु उदर की तृप्ति इससे भी नहीं होती। वास्तविक सम्पत्ति है नाज। महँगी के दिनों रुपया होते हुए भी पेट की पूर्त्ति पूर्णतया नहीं हो सकती। उपयोग की वस्तुओं की बहुतायत सुकाल है और इन्हीं की न्यूनता मात्र ही दुष्काल है।

यह सब कुछ मांगते हुए भी स्वार्थ बुद्धि नहीं रक्खी। परमात्मा के लिये सब कुछ चाहा है। वह सब के पिता हैं, सबको बांट देंगे। अग्नि के मुख में आहुति डालदी है कि यह देवों का दूत है, हव्यवाद है। सबको अपना २ भाग पहुँचा देगा। उन देवियों में हम भी हैं। जहां भारत तृप्त होगा, वहां हमारी तृप्ति भी हो रहेगी।

२. [क] ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्याजुहोतन स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम। यजु० अ० ३। मं० १।

(ओ३म्) परमात्मा को साक्षी मान कर (समिधा) लकड़ी से (अग्नि) अग्नि को (दुवस्यत) सत्कृत करो (घृतैः) घृत से (अतिथि) अतिथि के समान आए हुए अग्नि को (बोधयत) जगाओ अर्थात् प्रदीप्त करो। (अस्मिन्) इसमें (हव्या = हव्यानि) हवन सामग्री को (आ) अच्छी तरह (जुहोतन = जुहुत) डालो। (स्वाहा) जो कहा सो किया। (इदम्) यह (मम) अकेले मेरी (न) नहीं।

[ख] ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे इदन्नमम।

यजु० अ० ३। म० २।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा को साक्षी कर (सुसमिद्धाय) पूर्णतया प्रज्वलित (शोचिषे) शोधक (जातवेदसे) जात संसार में विद्यमान (अग्नये) अग्नि के लिये (तीव्र) तेज़ साफ़ (घृतम्) घृत को (जुहोतन=जुहुत) हवन करो। (स्वाहा) जो कहा सो किया। (इदम्) यह आहुति (जातवेदसे) जातवेदः (अग्नये) अग्नि के लिए है। (इदम्) यह (मम) मुझ अकेले की (न) नहीं।

इन दो मन्त्रों से उसी प्रकार दूसरी समिधा डालें।

यज्ञ की सामग्री लकड़ी घृत तथा हव्य है। यह तीनों शुद्ध और उत्तम हों। अग्नि पूर्णतया प्रदीप्त की जाए। नहीं तो हानि करेगी।

ऐसे ही संसार के प्रत्येक यज्ञ कर्म में अपना उत्तम सर्वस्व स्वाहा करना चाहिए। और मन्द अग्नि से नहीं किन्तु भड़कते हृदय से कार्यक्षेत्र में प्रवृत्त होना चाहिए।

३, ओम् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम। यजु० अ० ३। मं० ३

(ओ३म्) हे परमात्मन् (अङ्गिरः) व्यापक (समिन्द्धिः) वृत्तिक लकड़ियों से तथा (घृतेन) उपासना के घृत से (तम्) उस (त्वां) तुझ को (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं। (यविष्ठ्य) हे सब से बड़े मिलाने वाले तथा बखेरने वाले (बृहत्) बहुत (शोचा = शोच) प्रकाशित हो। (इदम्) यह आहुति (अङ्गिरसे) व्यापक (अग्नये) अग्नि के लिये है। (इदन्नमम) यह मुझ अकेले की नहीं। इस मन्त्र से तीसरी समिधा डालें।

यज्ञ उपासना है। लकड़ियों से अग्नि प्रज्वलित होती है। आत्मा समर्पण से परमात्मा के प्रकाश का अधिक मान होता है। भक्ति युक्त कर्म्म ज्ञान चक्षु का उन्मीलन करते हैं और सर्व प्रकाश का साक्षात्कार होता है। अग्नि पदार्थों को मिलाता और तोड़ता है। परमात्मा सृष्टि और प्रलय करते हैं। ऐसे ही मनुष्य भूतों को मिलाए और बखेरे। जिस तरह काम चले, चलाओ। सब पदार्थों का सार निकालें और उन उत्तम प्रयोग करे

---

५ घृताहुति

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जाजवेदस्तेने ध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नयेजातवेदसे इदन्नमम्।

इस मन्त्र का अर्थ पूर्व हो चुका है।

इस मन्त्र का पाठ पांच वार करे और प्रत्येक पाठ में स्वाहा कह कर एक आहुति घृत की दे।

घृत विषनाशक और पुष्टिप्रद पदार्थ है। इससे अग्नि की वृद्धि और प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस् तथा अन्नाद्य से समृद्धि होती है। इन पांच कामनाओं की साधक पांच आहुतियां हैं।

---

६ जल सेंचन

१ ओ३म् अदिते ऽनुमन्यस्व। गोभिल प्र० खंड ३। सू० १।

अर्थ —(ओ३म्) हे परमात्मन् ! (अदिते) न टूटने वाले अखण्ड ! (अनुमन्यस्व) हमारे अनुकूल हो।

इस मन्त्र से वेदी के पूर्व में जल छिड़के।

२ ओ३म् अनुमते ऽनुमन्यस्व। गोभिल प्र० खं० ३। सू० २।

(ओ३म्) हे परमेश्वर ! (अनुमते) अनुकूल मति वाले (अनुमन्यस्व) हमारे अनुकूल हो।

इससे वेदी के पश्चिम में जल छिड़के।

३ ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व। गोभिल गृ० प्र० ख० ३। सू० ३।

अर्थः—(ओ३म्) हे परमात्मन् ! (सरस्वति) सर्वज्ञ सब विद्याओं के प्रकाशक ! (अनुमन्यस्व) अनुकूल हो।

इस मन्त्र से उत्तर में जल छिड़के।

४ ओ३म् देव सवित प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु। यजु० अ० ३० । मं० १ ।

अर्थः—(ओ३म्) हे परमेश्वर ! (देव) प्रकाशक ! (सवित) प्रेरक ! (यज्ञं) यज्ञ को (प्रसुव) बढ़ाइए (यज्ञपतिं) यजमान को (भगाय) भजन तथा सौभाग्य के लिए (प्रसुव) बढ़ाइए। (दिव्यः) दिव्य (गन्धर्वः) ज्ञान का आधार (केतपूः) बुद्धि को पवित्र करने वाला परमात्मा (नः) हमारी (केतपू) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी परमात्मा (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वाद युक्त करें।

इस से वेदी अथवा कुण्ड के चारों ओर जल छिड़के। जल डालने के लिये वेदी के चारों ओर नाली होती है। नहीं तो पृथिवी पर छिड़क दें। चिंवटी आदि को आग में जाने से रोकने के लिये यह नाली बड़ा काम देती है। इससे पूर्व आग के जल जाने से कीटक कुंड से भाग जाते हैं। पानी की पराकार बन जाने से फिर उस में नहीं जाते। इस लिये नाली को पूर्व ही जल से भर देना हानि कारक है। इन मन्त्रों से ही भरना उचित है।

परमात्मा को इन मन्त्रों में पहिले अदिति फिर अनुमति और सरस्वति कहा है। परमात्मा एक रस रहते हैं। उन के नियम कभी नहीं टूटते। उनको अपने अनुकूल करने के लिए अपने आपको उनके अनुकूल कर लेना चाहिए। यही अदिति को 'अनुमन्यस्त्र' कहने का प्रयोजन है।

कोई यह न समझ ले कि परमात्मा निरेकठोर हैं। उनकी कठोरता, उनकी नियमारूढ़ता हमारी हितकारिणी है। उनके प्रसन्न होने का भी एक अटूट नियम है। यह मूढ़ लोगों का मुग्ध वचन है कि न जाने परमात्मा किस चेष्टा से राज़ि होते हैं। यदि यह विधि नियत नहीं, तो कोई भले कर्म्म करे ही क्यों ? तरंगी परमात्मा भले ही रुष्ट रहा करें। जिन के रीझने का प्रकार निश्चित नहीं, उनके रिझाने का यत्न व्यर्थ है। भक्तों की भक्ति अवश्य स्वीकार होती है। दुष्ट को दण्ड देने में कोई आना कानी नहीं की जाती और परमात्मा की यह व्रतशीलता हमारे व्रतों को सहायता देती है। जभी तो कहा है अदितेऽनुअन्यस्व' । हे हमारे अनुकूल मति वाले! हमारे अनुकूल मतिवाले! हमारे अनुकूल मति कर! अर्थात् हम वह कर्म्म करने का व्रत लेते हैं जो आप की मति के अनुकूल हों।

जल को अनुकूलता का भौतिक लक्षण बनाया है क्योंकि वह स्थान के अनुकूल बहता है। इस अनुकूलता के लिए परमात्मा से प्रेरणा चाही है कि हे सवितः देव! प्रेरक परमेश्वर

यजमान की अर्थात् उस की जो आप के विस्तृत यज्ञ का संक्षेप में अनुकरण करता है वृद्धि कीजिए। भजन के लिए तथा सौभाग्य के लिए उसके सहायी हूजिये।

वेदी के बीच में जाज्वल्यमान अग्नि है और उसके चारों ओर जल का कोट खिंचा है। यजमान इसमें अपना अभीष्ट स्वरूप देखता है। कि मेरी अन्तरात्मा ज्ञान से प्रचण्ड हो। उन्नतिशील संकल्प के साथ मैं प्रति क्षण ऊँचा उठूं। बुद्धि में मल का लेश न रहे। पवित्र प्रदीप्त अग्नि की भांति पतितपावन परमात्मा की पुनीत प्रेरणा से पवित्र होऊँ। सत्य पर आरूढ़ रहूं परन्तु वह सत्य जगत् को जलाने वाला न हो। शुद्धपानी की तरह सरस हो। मेरे वाक्य मधुर हों और मेरा अन्तःकरण स्वच्छ तथा सजग हो।

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्" का व्याख्यान अत्युत्तम रीति से हुआ है। लोग दिल दुखाने का नाम सत्यवादिता रख लेते हैं। वागिन्द्रिय वश में नहीं और कहते हैं हम स्पष्ट-वक्ता हैं। सत्य योग का अङ्ग है। इस का अनुष्ठान मुंहफटों से नहीं होता, न आडम्बरी मौनधारी ही इसके निवाहने का साहस कर सकते हैं। सत्य संयम चाहता है। समयोचित मति चाहता है। हित साधक प्रतिमा चाहता है। परोपकारिणी मुखवृत्ति चाहता है। इसके अन्दर अग्नि की लपट है परन्तु वाह्यरूप जल का है।

७. आघारावाज्याहुतिः

१ ओ३म् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (अग्नये) सर्व प्रकाशक तथा भौतिक अग्नि के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है। (इदं) यह (अग्नये) अग्नि के निमित्त हैं (इदं) यह (मम) एक मेरी (न) नहीं।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग से घृत की आहुति दे।

२ ओ३म् सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदन्नमम ।

गोभिल पृ० प्र० १ । खं० ८ । सू० १४ ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (सोमाय) शान्तिस्वरूप सर्वोत्पादक तथा चन्द्रमा के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति है। (इदं) यह (सोमाय) सोम के निमित्त है (इदं) यह (मम) एक मेरी नहीं।

इस मन्त्र से दक्षिण भाग में घृत की आहुति दे।

३. ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्कमम ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (प्रजापतये) प्रजा पालक तथा सूर्य के लिए (स्वाहा) सुन्दर आहुति है (इदं) यह (प्रजापतये) प्रजापति के लिये है (इदं) यह (मम) एक मेरी (न) नहीं।

इस मन्त्र से वेदी अथवा कुण्ड के मध्य भाग में घृत की आहुति दे।

४. ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय-इदन्नमम

अर्थः—(ओ३म्) परमेश्वर (इन्द्राय) सर्वैश्वर्यवान् तथा विजली के लिए (स्वाहा) सुन्दर आहुति हैं। इदं) यह (इन्द्राय) इन्द्र के लिए है (इदं) ये (मम) एक मेरी (न) नहीं।

इस मन्त्र से भी वेदी अथवा कुण्ड के मध्य भाग में घृत की आहुति दें।

भिन्न २ भागों में आहुति देने का यह प्रयोजन है कि कुण्ड में सर्वत्र अग्नि प्रज्वलित हो जाए। एक क्रम रखने से नियम रहता है। आगे घृत के साथ साकल्प (हवन सामग्री) डालनी है। इस से पूर्व आग को पूर्ण तथा प्रचण्ड कर लेना उचित है।

ज्योति विशेषतया चार साधनों से प्राप्त होती है। एक अग्नि द्वारा, दूसरे चांद द्वारा, तीसरे सूर्य्य द्वारा और चौथे बिजली द्वारा इन चारों प्रकारों के प्रकाश का पुञ्ज परमात्म-देव है। इन भौतिक ज्योतियों में उस परम ज्योति की झलक झलकती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के यज्ञ में इन ज्योतियों की क्या स्थिति है। यह आहुति मात्र ही तो है। जैसे घृत डालने से अग्नि की ज्वाला उठती है वैसे ही इस

विस्तृत यज्ञ की विशेष आहुतियां यह ज्योतियां दृष्टिगोचर होतीहैं और अपना कृत्य साधती हैं। यजमान इन ज्योतिषियों में अपनी ज्योति मिला, इन ज्योतियों से सम्पूर्ण लाभ उठा सकल विश्व के अनूठे यज्ञ में अपनी आहुति देना है। यही यजमान की यजमानता है। इसी में उस के समस्त परिश्रम की सिद्धि है॥

छोटी से छोटी नैत्यिक यज्ञविधि

उड़ लोगों के लिये जिन के पास समय और धन की न्यूनता है ऋषियों ने यज्ञ की छोटी सी मात्रा आवश्यक कर दी है। आगे उसी भाग का विचार किया जायगा। विषय सम्बद्ध होने कारण जिन बातों का उल्लेख पीछे कर चुके हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं की उन लोगो की भी जो यज्ञ का अनुष्ठान इतना करेंगे जितना आगे बतलाया है, इस पुस्तक का परायण आद्योपान्त कर जाना चाहिये। ताकि इतने यज्ञ में भी उनकी वह दृष्टि वहीं बनी रहे जिसका उल्लेख सारे यज्ञ के विषय में किया है।

यजमान स्वयं देख लेंगे कि इतना हवन करने में केवल सात मिनट समय और घृतादि मिला कर डेढ़ दो छटांक सामग्री से अधिक व्यय नहीं होता।

इतने को भी व्यर्थ समझना विचार न्यूनता है। संसार में कोई कोई कार्य्य कितना भी अल्प-परिमाण में क्यों न हो व्यर्थ नहीं। भौतिक लाभ के अतिरिक्त पारिवारिक प्रेम सामाजिक स्नेह इत्यादि की स्थिरता जो स्वतः प्राप्त हो जाती है, वह अमूल्य लाभ है।

८. प्रातः काल का यज्ञ

१ ओ३म सूर्य्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (सूर्यः) अन्तर्यामी (ज्योतिः) प्रकाश है। और (ज्योतिः) प्रकाश (सूर्य्यः) अन्तर्यामी है। अथवा भौतिक सूर्य्य प्रकाश का पुंज है। (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है।

२ ओ३म सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

अर्थः-(ओ३म्) परमात्मा (सूर्य्यः) अन्तर्यामी (वर्चः) तेज है। और (वर्चः) तेज (ज्योतिः) प्रकाश है। ऐसा ही भौतिक सूर्य है। (स्वाहा) यह सम्यक् आहुति है।

३. ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योति :स्वाहा।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यः) सर्वव्यापक है। तथा (सूर्यः) सर्व व्यापक (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है। ऐसेही भौतिक सूर्य है। (स्वाहा) मन शरीर वचन द्वारा यह कहा।

४. ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रासजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (देवेन) प्रकाशमान् (सवित्रा) प्रेरक के (सजूः) साथ तथा (इन्द्रवत्या) प्रकाश वाली (उषसा) उषा के साथ (जुषाणः) इस आहुति को ग्रहण करता हुआ (वेतु) चमके। (स्वाहा) मन वचन कर्म ने मिल कर आहुति दी।

प्रातः काल की सुवर्णमय समय ! उषा के केसर में स्नान किया हुआ सूर्य । परमात्मा के अलौकिक प्रकाश का ही तो दृश्य है । भक्त इसी में भक्ति भोजनका दर्शन करते हैं । कभी सूर्य को ज्योति और कभी ज्योति को सूर्य कहा । उसका भौतिक भाग निकल दिया । सूक्ष्म ध्यान सूक्ष्म ज्योति को ही ध्यान गोचर किया ।

ऊँची २ दीवारों में घिरे रहने वाले इस कौतुक को नहीं देखते । जो तमाशा योगी को निरन्तर योग से वर्षों पीछे देखना प्राप्त होता है यजमान को नित्य सहसा ही दृष्टिगोचर है । एकाग्र वृत्ति से कोई इस रङ्ग को देखे सही, आत्मा रङ्ग जाती है ।

सूर्य्य की ज्योति, उषा की ज्योति और इन सब में परमात्मा की ज्योति को ओत प्रोत कर सर्व व्यापक की सर्व व्यापकता का अपूर्व निश्चय हुआ । आहुति क्या दी ! ज्योतिः स्वरूप की ज्योति में अपनी ज्योति मिलाई । आत्मा की अनूठी जोत जगी ।

---

९. व्याहृत्याहुतियां

१ ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (भूः) प्राण स्वरूप है (अग्नये) सर्वव्यापक (प्राणाय) प्राण के लिए अथवा गति-

शील अन्दर जाते श्वास के लिए (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह (अग्नये) सर्व व्यापक तथा गतिशील (प्राणाय) प्राण के लिए है (इदम्) यह (मम) मेरी एक की (न) नहीं ।

२ ओ३म् भुवर्वायवे ऽपानाय स्वाहा । इदं वायवे अपानाय इदन्न मम ।

अर्थ-(ओ३म्) परमात्मा (भुवः) अपान अर्थात् दुःख नाशक है । (वायवे) बल स्वरूप (अपनाय) दुःख नाशक अथवा बाहिर जाने वाले उच्छ्वास के लिए (स्वाहा) यह उचित आहुति है । (इदम्) यह (अपानाय) अपान (वायवे) वायु तथा दुःख हर्त्ता बलवान् परमेश्वर के लिए है । (इदम्) यह (मम) अकेली तेरी (न) नहीं ।

३. ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ।

अर्थ –(ओ३म्) परमात्मा (स्वः) व्यान अर्थात् व्यापक है । (आदित्याय) अखण्ड (व्यानाय) सर्वव्यापक परमेश्वर अथवा शरीर व्यापी व्यान वायु के लिए (स्वाहा) सुन्दर आहुति है । (इदम्) यह (आदित्याय) अखण्ड (व्यानाय) व्यापक परमात्मा तथा व्यान वायु के लिए है । (इदम) यह (मम) मेरी अकेली (न) नहीं ।

४. ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम।

अर्थ—(ओ३म्) परमात्मा (भूः) प्राण (भुवः) दुःख नाशक कर्ता (स्वः) सर्वव्यापक सुख स्वरूप है। अग्नि-वायु-आदित्येभ्यः) सर्वव्यापक बलस्वरूप तथा अखण्ड (प्राण–अपान व्यानेभ्यः) प्राणस्वरूप दुःखनाशक तथा सर्व व्यापक परमेश्वर के लिये अथवा गति शील इत्यादि विशेषणों वाले प्राण आदि वायुओं के हितार्थ (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है। (इदं) यह (अग्नि-वायु-आदित्यभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः) इन विशेषणों वाले ईश्वर और प्राणों के लिये है। (इदम्) यह (मम) मेरी (न) नहीं।

पहले परमात्मा की ज्योतिष्मत्ता का चिन्तन सूर्य्य तथा उषा के प्रकाश द्वारा किया। अब उसकी शक्ति, उसकी व्यापकता तथा आनन्ददायित्व का चिन्तन प्राणों की उपमा से करते हैं। अचिन्त्य के चिन्तन की विधि उन पदार्थों का अवलोकन है जिन में उन के गुणों का कोई अंश झलक सके। प्रतिमापूजन से उस के किसी गुण का भान नहीं होता।

प्राणायाम करने वाले को हवन की सुगन्धि अतीव लाभकारी है। वायु में औषधों का संचार कर प्राण के लिए सुख की सामग्री इकट्ठी कर दी है।

५ ओ३म् आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (आपः) सर्व-व्यापक (ज्योतिः) प्रकाश-स्वरूप (रसः) आनन्द-स्वरूप (अमृतम्) अमर (ब्रह्म) सब से बड़ा (भूः) जगत का प्राण (भवः) दुःखनाशक (स्वः) सुखस्वरूप (ओम्) रक्षक है। (स्वाहा) यह सुंदर वाणी है।

---

१० पूर्णाहुति

१ ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।

२ ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।

३ ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (सर्वम्) सब तरह (वै) निश्चय से (पूर्णम्) पूर्ण है। (स्वाहा) यह अच्छी वाणी है अथवा परमात्मा को साक्षी कर यज्ञ को पूर्ण किया है। अपूर्ण आत्मा जितना पूर्ण परमात्मा का ध्यान करेगा उतना उसकी त्रुटियां मिटाकर पूर्णता आयेगी।

---

११ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अर्थः—(ओ३म्) हे परमात्मन् हमें (शान्तिः ३) तीनों प्रकार की शान्ति दीजिए।

यज्ञ के अन्त में शान्ति कहने का अर्थ यह है कि शान्ति अकर्म में नहीं। पूर्ण साहस के साथ यज्ञशील रहने से ही त्रिविध शान्ति प्राप्त होती है। आलसी को निद्रा का सुख भी नहीं मिलता। अवकाश का सुख वह भोगते हैं जो अवकाश नहीं करते।

---

१२ सायंकाल का हवन

१. **ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।**

अर्थ—(ओ३म्) परमात्मा (अग्निः) सर्वज्ञ (ज्योतिः) प्रकाश है। और (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (अग्निः) सर्ववित् है। भौतिक अग्नि भी प्रकाश है। (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है।

२. **ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।**

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (अग्निः) सर्वज्ञ (वर्चः) तेजः स्वरूप है। तथा (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (वर्चः) तेज का पुञ्ज है। (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है।

३. **ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।**

अर्थ हो चुका है।

४. ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।

अर्थः—(ओ३म्) परमात्मा (देवेन) प्रकाशस्वरूप (सवित्रा) प्रेरक से (सजूः) मिलकर [इन्द्रवत्या] प्रकाश युक्त [रात्र्या] सन्ध्या वेला से [सजूः] मिलकर [जुषाणः] सेवन करता हुआ अग्निः [वेतु] चमके । [स्वाहा] यह सुहावनी वाणी है ।

प्रातःकाल सूर्य्य था अब अग्नि है । सन्ध्या वेला का रङ्ग उषा का सा ही होता है । शेष सब कुछ वह है जो प्रातः था समय पलटा है । समा नहीं पलटा ।

इस मन्त्र से यह स्पष्ट हो गया कि सायंकाल का हवन रात्रि होने से पूर्व करना चाहिये । उस के पीछे सन्ध्या वेला का सुवर्णमय तेज न दीखेगा । कीटकों के अग्नि में गिर कर मरने का भी भय रहता है जिस में हिंसा दोष लगता है ।

इन आहुतियों के पीछे व्याहृति-आहुतियां प्रातःकाल की भान्ति उन्हीं मन्त्रों से दें । ऐसे ही पूर्णाहुति ।

यदि प्रातः सायं दोनों समय हवन न कर सकें तो प्रातःकाल ही पहिले [सूर्य्यो ज्योतिः] इत्यादि से चार आहुतियां, फिर [अग्निर्ज्योति] से चार, तत्पश्चात् व्याहृति और पूर्ण आहुतियां डालें ॥

गुरुकुलों में प्रयुक्त होने वाले विशेष मंत्र।

गुरुकुलों में साधारण नैत्यिक हवन के पीछे वेदारम्भ संस्कार के लिए हुए व्रत पालन के पांच मन्त्र और पढ़े जाते हैं, और उनके साथ एक २ आहुति दी जाती है। मन्त्र और उन के अर्थ यह है :—

१ ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमितच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा। इदमग्नये इदन्नमम।

अर्थ :—(ओ३म् अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप ओ३म् (व्रतपते) व्रतों के पालने वाले ! मैं (व्रतं) व्रत का (चरिष्यामि) आचरण करूं (तत्) वह (ते) तुझ से (प्रब्रवीमि) प्रकटतया कहता हूं (तत्) इस में (शकेयम्) मैं शक्त होऊं। (तेन) उस से (ऋध्यासम्) मैं समृद्ध होऊं। (अहं) मैं (अनृतात्) असत्य से [मुक्त होकर] (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य को (उपैमि) प्राप्त होता हूं (स्वाहा) यह सुन्दर वाणी है (इदम्) यह (अग्नये) ज्ञान स्वरूप के लिए है (इदम्) यह (मम) मेरी अकेले की (न) नहीं।

२ ओ३म् वायो व्रतपते.........इदन्न मम।

अर्थः—(ओ३म् वायो) हे बल स्वरूप ओ३म् !...... ....शेष पूर्ववत्।